International Journal of Applied Research 2023; 9(7): 89-91

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(7): 89-91
www.allresearchjournal.com
Received: 12-05-2023
Accepted: 19-06-2023

दिवाकर पाण्डेय
प्राध्यापक, हिंदी विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय,
आरा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
दिवाकर पाण्डेय
प्राध्यापक, हिंदी विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय,
आरा, बिहार, भारत

खुसरो काव्य के विविध आयाम

दिवाकर पाण्डेय

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो एक ऐसे साहित्यकार हैं जो अनुपम हैं, अतुल्य हैं, अनन्वय हैं. वे स्वयं उपमेय भी हैं और उपमान भी. उन्होंने नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा पाई थी. प्रकृति ने उनमें एक साथ अनेक गुणों को भर दिया था जिसकी सतरंगी आभा आज भी सुधी–सह्रदयों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है.

एक ओर वे कवि थे तो संगीतज्ञ भी. योद्धा थे तो संत भी. दरबारी थे तो विरक्त भी. गायक थे तो वादक भी. इतिहासज्ञ थे तो राजनीतिज्ञ भी..... अनेक विधाओं का समाहार था उनमें. वे बहुभाषाविद थे. अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओँ में निष्णात. फिर भी , अपनी मातृभाषा खड़ीबोली हिंदी के हिमायती.

उन्होंने हिंदी का समर्थन करते हुए 'आशिका' नामक मसनवी में लिखा है– "आप हिंदी को फारसी से किसी भी प्रकार से हीन नहीं पाएंगे. वह भाषाओँ की स्वामिनी अरबी से कुछ हीन अवश्य है, पर शय और रूम (फारस के शहर) में जो भाषा प्रचलित है, वह हिंदी से हीन है. पर मैंने बहुत विचारपूर्वक निर्धारित किया है कि हिंदी अरबी के समान है, क्योंकि इन दोनों में कोई भी मिश्रित नहीं है. अगर अरबी में व्याकरण, शब्द–विन्यास है तो हिंदी में वह कम नहीं है. जो व्यक्ति इन तीनों भाषाओँ का ज्ञाता है, वह समझ लेगा कि मैं न तो भूल कर रहा हूँ और न ही अतिशयोक्ति."[1]

इस वक्तव्य में ध्यातव्य बात यह है कि जब खुसरो यह बात कह रहे थे, तब हिंदी एक क्षेत्र विशेष में बोली जानेवाली बोलचाल की सामान्य भाषा थी, जिसका शिष्टसाहित्य में कहीं कोई स्थान नहीं था. सच कहा जाय तो शिष्टसाहित्य में इसके प्रथम प्रयोक्ता अमीर खुसरो ही थे. बोलचाल की एक सामान्य भाषा को तत्कालीन साहित्य की स्थापित भाषाओँ के समकक्ष लाकर खड़ा कर देना, खुसरो के हिंदी–प्रेम की पराकाष्ठा है.

वे अरबी–फारसी के परम ज्ञाता थे अवश्य, पर प्रेम हिंदी से करते थे. उन्हें अपने हिंदी ज्ञान पर गर्व था. वे अरबी–फारसी के जानकारों से कहा करते थे–

"तुर्क हिन्दुस्तानियम, मन हिंदवी गोयम जवाब,
जो मन हिंदवी पुरस ता नाज गोयम."

अर्थ यह कि मैं हिंदुस्तान के बारे में सब कुछ जानता हूँ, इसलिए वास्तव में तुम मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो हिंदी में पूछो. मैं तुझे अनुपम बातें बता सकूँगा.

वे अपने को तूती–ए–हिन्द अर्थात हिन्दुस्तान की तूती कहा करते थे.

सर्वप्रथम खुसरो ने एक सीमित क्षेत्र की लोकभाषा को साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित कर उसको साहित्यिक शक्ति का एहसास कराया और यह संदेश दिया कि आगे चलकर यही भाषा भारतीय साहित्य की सबसे प्रभावशालिनी भाषा होगी.

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि जिस समय भारतवर्ष में साहित्यिक भाषा के रूप में अपभ्रंश की प्रतिष्ठा थी, उस समय दो महान कवियों दृ खुसरो और विद्यापति–ने भाषा के स्तर पर विद्रोह किया. दोनों ने अपनी–अपनी मातृभाषाओं को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया. विद्यापति ने जहाँ मैथिली को अपनाया, वहां खुसरो ने खड़ीबोली को. पर, आश्चर्य यह है कि खड़ीबोली आगे चलकर भारतीय साहित्य ही नहीं, अपितु विश्वसाहित्य की एक शक्तिशालिनी एवं लोकप्रिय भाषा बनी.

इस अर्थ में खुसरो वास्तव में खड़ीबोली हिंदी के जनक सिद्ध होते हैं.

'अमृतवाणी' में खुसरो की जो हिंदी रचनाएँ संगृहीत हैं, वे अनेक विधाओं में लिखी गयी हैं. यथा दृ खलिकबारी, बूझ पहेली, बिन बूझ पहेली, दो सखुने, निस्बतें, गीत, दोहे, गजल, ढकोसला, पहेलियाँ, कहमुकरियाँ और कव्वाली.

केवल भाषा ही नहीं, भावभूमि के स्तर पर भी खुसरो ने परवर्ती साहित्यकारों के लिए जमीन तैयार की. खुसरो दार्शनिक कवि थे. एक ओर उन्होंने जहाँ हलकी–फुलकी मनोरंजक बातें कहकर लोक का रंजन किया है, वहीं दूसरी ओर गंभीर दार्शनिक चिंतन द्वारा गूढ़ रहस्य की बातें भी की हैं.

संत कवि कबीर पर खुसरो के दार्शनिक चिंतन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है.

खुसरो कहते हैं–

"आधा मानुष निगल रहे, आँखों देखी खुसरो कहे"
इसी 'आंखों देखी' को कबीरदास ने 'आँखिन देखी' कहा है ––
"तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी"
दूसरा भावसाम्य देखिये. खुसरो कहते हैं––
"आग लगे फूले फले, सींचन जावे सूख
मैं तोहि पूछो हे सखी, फूल के भीतर रूख"

खुसरो में 'बेलरी' जहाँ आग लगने पर फलती–फूलती है, वहां कबीर में आकर काटने पर हरी–भरी होने लगती है. एक में प्रक्रिया का समापन है तो दूसरे में समापन की प्रक्रिया जारी है.

अब तीसरा भावसाम्य देखिये. अपने एक सूफ़ी गीत में खुसरो कहते हैं–

"ऐ री सखी, मोरे पिया घर आये
भाग जगे इस आँगन को
बलि–बलि जाऊं मैं अपने पिया के
चरन लगायो निर्धन को"
अब कबीरदास अपने निर्गुन गीत में कहते हैं––
"दुलहिन गावहु मंगलचार
आजु घर आए राजा राम भरतार"

इस तरह यह बात स्पष्ट हो जा रही है कि परवर्ती साहित्यकारों के लिए खुसरो ने दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी. वस्तुतः खुसरो के काव्य में दर्शन एवं काव्य का मणिकांचन संयोग मिलता है. "खुसरो के काव्य में वह दार्शनिक दृष्टि मिलती है जिसका विस्तार परवर्ती साहित्य में हुआ है. इन संतों में कबीर प्रमुख हैं जिन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात कही है. कबीर की उलटबासियों, नार–नारी के पारस्परिक संबंध, लोगों की कनक–कामिनी के प्रति लीनता, आँखों देखी पर विश्वास आदि महत्त्वपूर्ण बातों का मूल खुसरो के काव्य में मिलता है"[2]

काव्य–कला और संगीत–कला, दोनों पर खुसरो का समान अधिकार था. वे एक महान संगीतज्ञ और वाद्यविद भी थे. कहा जाता है कि कई राग–रागिनियों के पुरस्कर्ता खुसरो कई वाद्ययंत्रों के निर्माता भी थे. उन्होंने तबला, ढोलक, सितार आदि का आविष्कार करके बजाने के तरीके भी स्वयं बनाये. इन तरीकों में भी उन्होंने भारतीय और ईरानी दोनों ही संगीत पद्धतियों का आधार लिया.

भारतीय संगीत के प्रति खुसरो को अगाध प्रेम था. तुलनात्मक दृष्टि से वे भारतीय संगीत को अरबी संगीत से श्रेष्ठ मानते थे.

खुसरो ने जिन नई संगीत विधाओं का निर्माण किया, उनमें कव्वाली भी एक प्रमुख विधा है. आज आठ सौ वर्षों के बाद भी उनकी कव्वालियाँ जन–जन की कंठहार बनी हुई हैं. उनकी कव्वालियाँ पारलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करती हैं–

"छापा तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाय के
प्रेम बटी का मदवा पियाय के
मतवारी कर दीनी रे मोसे नैना मिलाय के"

"बहुत कठिन है डगर पनघट की
कैसे मैं भर लाऊं मधवा से मटकी
पनिया भरन को जो मैं गयी थी
दौड़ झपट मोर मटकी-पटकी
बहुत कठिन है डगर पनघट की"

खुसरो प्रेम और मस्ती के कवि हैं. उनकी कविताओं में लोकजीवन की मस्ती प्रस्फुटित हुई है. उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने और कव्वालियाँ इतनी लोकप्रिय हुई कि वे आज भी लोककंठ में भी विद्यमान हैं. एक लोककवि के रूप में वे भोजपुरी लोककवि घाघ और भड्डरी से भी आगे हैं. घाघ मात्र एक कृषि विज्ञानी कवि के रूप में जाने जाते हैं, जबकि खुसरो एक बहुआयामी कवि के रूप में. खुसरो को भी कृषि–संस्कृति का अपूर्व ज्ञान था. उनकी एक पहेली बहुत प्रसिद्ध है–

"गोरी सुंदर पातरी सांवर केसर रंग
ग्यारह देवर छाड़िके चली जेठ के संग"

इस पहेली का अर्थ अरहर है जो एक प्रसिद्ध दलहन फसल है. यह आसाढ़ में बोई जाती है. इसके पलते–बढ़ते, फलते–फूलते, पकते और दंवनी–पीटनी होते होते जेठ का महीना आ जाता है. खुसरो ने अरहर बोने के बाद और जेठ के पूर्व आये ग्यारह महीनों को ग्यारह देवर कहा है. उनका यह कृषि ज्ञान आश्चर्य में डालनेवाला है.

"बखत–बखत मोहे वाकी आस
रात–दिन वह रहत मेरे पास
मेरे मन की करत सब काम
ऐ सखी साजन ना सखी राम [3]"

'रात–दिन वह रहत मेरे पास' में कवि ने राम के प्रति जो अपना सामीप्य भाव दिखाया है, वह भारतीय भक्ति–परम्परा को परिपुष्ट करता है.

मानव और प्रकृति का रिश्ता अटूट रहा है. हिंदी के कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रंगों का चित्रण किया है. प्रकृति के मूलतः दो रूप हैं– कोमल और कठोर.

खुसरो का मन प्रकृति के कोमल रूप पर रीझा है. ऋतुओं में सबसे आह्लादक वसंत होता है. वसंत अपने मादक रूप से अनादि काल से कवियों को रिझाता आया है. खुसरो का कोमल ह्रदय वसंत को देखकर आह्लादित हो उठा है–

"सगन वन फूल रहीं सरसों
अंबवा फूले टेसू फूले
कोयल बोले डगर–डगर
और गोरी करत सिंगार
मलनिया गेंदवा ले आई कर सों
सगन वन फूल रही सरसों"

यहाँ फूल ही फूल हैं. सरसों के फूल हैं, आम के फूल हैं, टेसू के फूल हैं. साथ ही साथ कोयल की मधुर तान और गोरी का सिंगार भी है. वातावरण में पूरी मादकता छाई हुई है. चाक्षुष और घ्राण बिम्ब समन्वित हो काव्य–सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहे हैं. अगर वसंत ऋतुओं का राजा है तो वर्षा ऋतुओं की रानी. भला

राजा की खिदमत में कसीदे गढ़े जाये और रानी यों ही रह जाये. ऐसा कैसे हो सकता है? खुसरो वर्षा रानी की भी अगवानी करने को मचल उठे हैं–

"आज घिर आई दई भारी घटा कारी
वन बोलन लगे दैया री वन बोलन लागे मोर
रिमझिम–रिमझिम बरसन लागी छाय री चहुँ ओर
आज वन बोलन लागे मोर
कोयल बोले डगर–डगर पर पपीहा मचायो शोर
ऐसे समय सजन परदेस गए बिरहन घोर"

यहाँ विरह को उद्दीप्त करनेवाली पूरी सामग्री मौजूद है. भारी और कारी घटा है, घटा देखकर शोर मचाता मोर है. सब कुछ है, पर नहीं है तो सिर्फ प्रियतम. वे स्वयं परदेस चले गए हैं और नायिका के पास सिर्फ विरह को छोड़ गए हैं
इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रकृति के रंग में लोकजीवन की उमंग घुली हुयी है. लोकरंग में रेंज खुसरो के ये गीत लोकजीवन के रस से संपृक्त हैं. आगे चलकर लोकजीवन का यह रंग काफी गाढ़ा हो उठा है, जब उनके गीत लोकजीवन के दुःख–दर्द को आत्मसात करने लगते हैं.
लोकजीवन में व्याप्त नारियों की पीड़ा को खुसरो ने काफी गहरी संवेदना से उकेरा है. दूर देश में ब्याही गयी एक नवविवाहिता की पीड़ा को कवि ने संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है–

"काहे को ब्याहे बिदेस
रे लखि बाबुल मोरे
भईया को दी है बाबुल महला–दुमहला
हमको दी है परदेस, लखि बाबुल मोरे"

लगता है. खुसरो इस नारी के ह्रदय में समाकर उसके दर्द को अभिव्यक्ति दे रहे हैं इतना ही नहीं, वह बेटी न हुई, मानो चिड़िया हो गयी. वह भी पिंजरे की चिड़िया.

"मैं तो बाबुल तोरे पिंजरे की चिड़िया
रात बसे उड़ि जाऊं, लखि बाबुल मोरे"

इतनी पराधीन कि उसे मालूम ही नहीं कि उसे कहाँ पठाया जा रहा है, बस पठाया जा रहा है, इतना ही मालूम है उसे. जब उसने पालकी का पर्दा उठाया तो उसे पता चला कि यह कोई बेगाना देश हैकृ

"पर्दा उठा के जो मैं देखी
आये बेगाने देश, लखि बाबुल मोरे"

प्रेम एक ऐसा तत्त्व है जिसपर मानव–मन हमेशा रीझता रहा है और आगे भी रीझता रहेगा. कवियों ने इसे अपने–अपने कोण से देखा है, पर यह है कि जिस कोण से देखिये कुछ नया ही दिख पड़ेगा. खुसरो ने प्रेम को जिस रूप में देखा है, वह अद्भुत हैकृ

"खुसरो दरिया प्रेम का उलटी वाकी धार
जो उबरा सो डूब गया जो डूबा सो पार"

प्रेम एक ऐसा दरिया है जिसकी धारा उल्टी दिशा में चलती है. इस दरिया में डूबकर ही पार किया जा सकता है.
छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा भी खुसरो के भावबोध को अपने ढंग से व्यक्त करती हैं–

"तरी को ले जाओ मँझधार
डूबकर हो जाओगे पार"

भाव और भाषा दोनों स्तरों पर खुसरो प्रयोगधर्मी रहे हैं. एक ओर वे फारसी के महान ज्ञाता थे तो दूसरी ओर हिंदी के अनुरागी. उन्होंने इन दोनों भाषाओँ को एक दूसरे के समीप लाकर चमत्कृत करनेवाली एक नई शैली विकसित की है.

"जे हाले मिसकी माकुल तगाफूल
दुराय नैना बनाय बतियां
कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐजां
न लेहू काहे लगाय छतियां"
इस तरह यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाव एवं शिल्प के स्तर पर खुसरो–काव्य वैविध्यपूर्ण है.

सन्दर्भ

1. अमीर खुसरो : डॉ सोहनलाल सुमनाक्षर: प्रकाशन विभाग: पृष्ठ सं- 20
2. उपरिवत, पृष्ठ सं- 33